मुद्दे पर आना हमारे नेता कब सीखेंगे

व्यर्थ की बातों को ऊंची से ऊंची आवाज में रेतते जाना ही अब राजनीतिक कौशल बन गया है

विश्वनाथ सचदेव

हिटलर के प्रचारमंत्री गोबेल्स का सबसे बड़ा प्रचार-मंत्र था- एक झूठ को यदि सौ बार बोला जाए ता वह सच बन जाता है। राजनीति में इस मंत्र को कई-कई बार आजमाया गया है, आजमाने वाला अक्सर निराश नहीं हुआ है। इस मंत्र को और असरदार बनाने के लिए हमारे राजनेताओं ने इसमें एक नया पहलू यह जोड़ा है कि बात जितनी जोर से कही जाएगी, उसका असर उतना ही ज्यादा होगा। इसीलिए हमारे नेता अक्सर जोर से बोलते है- टीवी स्टूडियो में बैठकर भी वे धीरे से, शांति से अपनी बात नहीं कह सकते। यह जानते हुए भी कि स्टूडियो के माइक पर्याप्त सेंसिटिव होते है और सुनने वाला यदि चाहे तो अपने टीवी का वॉल्यूम बढ़ाकर भी सुन सकता है।

भेड़चाल के तर्क

हमारे नेता यह मानकर चलते है कि जनता को आसानी से मूर्ख बनाया जा सकता है। यह सही है कि जनता की याददाश्त कमजोर होती है और अक्सर यह बातों को भूल जाना पसंद करती है। लेकिन इसका अर्थ यह नही होगा कि जनता को कुछ याद नहीं रहता। जनता वह सब याद रखती है जो याद रखने लायक होता है। वह जमाना लग गया जब नेताओं के भाषण सुनने के लिए भीड़ जुटती थी। सब जानते हैं कि अब भीड़ जुटाई जाती है। जुटाई एक ओर भीड़ भी जाती है आजकल। टीवी चैनलो की भीड़। इनके लिए भीड़ के आयोजकों को यह प्रचारित करना पड़ता है कि भीड़ शानदार होगी और नेता का भाषण भी। एक बार चैनलों को लग जाता है कि फलां नेता टीआरपी वाला है तो स्वयमेव खिंचे चले आते हैं। घंटा-घंटा भर के भाषण लाइव दिखाए जाते है और घंटो उन भाषणों पर चर्चा होती है।

जनतांत्रिक व्यवस्था में ये बातें परेशान करने वाली हैं, लेकिन परेशानी उन बातों से भी है जो चुनावी सभाओं में हमारे नेता करते हैं। उम्मीद क जाती है कि नेता जनता को यह बताएं कि देश के सामने खड़ी समस्याओं से निपटने के लिए उनके पास क्या दृष्टि है? अब तक उन्होंने सेवा के नाम पर क्या किया हैं? समन्वित विकास के लिए हमें क्या करना चाहिए? सांप्रदायिकता और जातिवाद जैसी समस्याओं का समाधान कैसे हो सकता है? हमारे नेताओं के भाषणों में ये शब्द तो होते हैं, लेकिन

शब्दों के पीछे जो प्राण-शक्ति होनी चाहिए, वह कहीं नही दिखाई देती। यह प्राण-शक्ति राजनीतिक ईमानदारी से आती है- और हमारी त्रासदी यह है कि हमारे देश में ईमानदार नेतृत्व का अभाव है।

एक नेता आता है, अपनी पारिवारिक त्रासदी और शहादत की दुहाई देकर हमारी संवेदना जीतने की बात करने लगता है। वह यह नहीं समझना चाहता कि शहादत अनमोल होती है, उसकी कीमत न लगाई जा सकती है, न चुकाई जा सकती है। एक और नेता पचास साल का काम पांच साल में कर देने के दावे करने लगता है। उसकी बात सुनने में अवश्य अच्छी लगती है, पर यह कोई नहीं बताता कि यह जादू होगा कैसे? हमारी चुनावी राजनीति की त्रासदी यह भी है कि बुनियादी मुद्दों की बात हमारा नेतृत्व नहीं कर रहा, वह सिर्फ मुद्दे लपकता दिखाई दे रहा है। पिछले कुछ दिनों में शहजादे और प्रधानमंत्री-पद के उम्मीदवार के बीच मुद्दे लपकने वाली इस राजनीति की रस्साकशी का खेल देश ने खूब देखा है। उम्मीदवार को शहजादे का अपनी मां के आंसुओं की बात करना गलत लगता है, पर चाय बेचने वाले अपने बचपन की दुहाई देकर गरीबी को भुनाना में कुछ भी गलत नही लगता। इंदिरा गांधी की हत्या के बाद सिखों पर हुए अत्याचार की बात तो उन्हें याद रहती है पर दस साल पहले गुजरात में हुई सांप्रदायिक हिंसा को वो याद रखना नही चाहते।

इस तरह की बातें याद रखनी चाहिए, ताकि हम इस बारे में सावधान रहें और ऐसा फिर कभी न हो। लेकिन, आम चुनाव की देहरी पर खड़े देश में जो बात न भूलना जरूरी है वह यह है कि देश की जरूरत समतावादी समाज है, जिसमें सबको आगे बढ़ने का समुचित अवसर मिले। देश की जरूरत है समन्वित विकास, एक स्वस्थ और प्रगतिशील समाज का निर्माण। इन मुद्दों पर हमारा नेतृत्व बात कयों नही करता?

दमघोंट गंध

सतही और भावनात्मक मुद्दे उछालकर अथवा वैयक्तित्व आरोपों-प्रत्यारोपों के सहारे राजनीतिक नफे-नुकसान का समीकरण बिठाने वाले हमारे नेता एक स्वस्थ राष्ट्र-राज्य के लिए जरूरी मुद्दों के बारे में कब सोचेंगे? हवाई जहाज से बुंदेलखंड की नदियां देखकर वहां के किसानों की आत्महत्याओं का कारण जानने की कोशिश करने वाले हमारे नेता जमीन पर उतरकर स्थितियों की गंभीरता को कब समझेंगे? देश को आज जमीनी मुद्दों से जुड़े, ठोस चिंतन करने वाले नेतृत्व की आवश्यकता है। शब्दों और नारों से खेलने वाला नेतृत्व हमें बहुत दूर तक नही ले जा सकता। इन शब्दों से सतही समझ की गंध आती है। ऐसी गंध में जनतंत्र का दम घुटता है।

लेखक राजनीतिक विश्लेषक हैं